पंजाब और गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी संत काव्य में 'गुरु' तत्व की अवधारणा एक अनुशीलन

HANSA MEHTA LIBRARY

शोध प्रबंध की संक्षिप्त रुप रेखा

प्राचीन काल से ही भारत भूमि ऋषियों, मुनियों और संतों महंतो की तपोभूमि रही है । चारो बेद,पुराण, आरण्यक, उपनिषद् ,धर्मशास्त्र, ज्योतीष, आगम आदि इन ऋषि–मुनियों के ज्ञान एवं विद्वता के परिचायक हैं , षटदर्शनों के अतिरिक्त आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों का उदय इसी भारत भूमि पर हुआ । जिसमें संग्रहित ऋषि–मुनियो के विचार आज भी हमें आन्दोलित करते हैं । मनुस्मृति कार का कहना है कि प्राचीन काल से ही विदेशों से लोग यहां चरित्र और संस्कार की शिक्षा ग्रहण करने के लिये आते थे। 1– भारत देश के निर्माण में संतो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । कन्याकुमारी से काश्मीर तक जगन्नाथपुरी से द्वारिका पुरी तक भगवान शंकराचार्य ने वैदिक संस्कृति के उत्थान के लिए पदयात्रायें की , मठों की स्थापनायें की । यदि हम इस काल का अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होता है कि इस काल में शैव ,वैष्णव , शाक्त और गाणपत्य आदि संप्रदाय आपस में लड झगड़ रहे थे । जिससे देश की धार्मिक स्थिति अत्यंत बिगड़ चुकी थी । भगवान शंकराचार्य ने सभी संप्रदायों को एक सूत्रता में बांधी है और वेद निहित उपासना पद्धतियों पर बल दिया है । ब्रम्हसूत्र की व्याख्या के साथ–साथ उन्हों ने जाँति–पाँति छुआ छूत और वाह्य आडम्बरों का डटकर विरोध किया है उन्हों ने आत्मा को ब्रह्ममय मानकर संसार के

1– एतद्देश प्रसतस्य सकाशदग्र जन्मनः ।
स्वं–स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवः ।।
मनुस्मृति–2 :20,पृ. 197

विनय संपन्न ब्राह्मण में है और वही हाथी व गाय में भी है वही कुत्ते और चाण्डाल में भी है फिर भेद भाव कैसा ! संत महापुरुष तो किसी में भेद भाव गिनते नहीं । उनके लिये संसार में सभी प्राणी समान हैं यही सनातनधर्म है यही संसार में फैले सभी धर्मों का मूल भी है । इसी सनातन धर्म की प्रतिष्ठा महाप्रभू वल्लभाचार्य, माधवाचार्य रामानुजाचार्य, ने की । जिनके विचार या मार्ग भले ही अलग हों परंतु गंगा, जमुना, सरस्वती, की तरह एक ही सागर में आकर मिलते हैं । भक्ति का उदय द्राविड में हुआ उसे स्वामी रामानन्द उत्तर में ले आये कबीर नें सप्तद्वीप और नवखण्ड में इसका प्रचार किया कबीर रामानन्द के शिष्य थे वे रामानन्द के विचारों को समकालीन जगत में व्याप्त साम्प्रदायिक रीति रिवाजों के खोखले आदर्शों और पाखण्डों का विरोध करते हुये प्रचार कर रहे थे ।

भक्तिज्ञान और वैराग्य के आधार स्तंभ सत्गुरु कबीर से : भारत भूमि पर संत युग की निर्झरणी प्रवाहित होती है ।

उत्तर भारत में यहां तुलसी, कबीर, सूर आदि ने भक्तिज्ञान और ब्रह्मका उपदेश किया शास्त्रों की प्रतिष्ठा की वहीं पर पंजाब की भूमि पर स्वामी दयानन्द ने वैदिक सभ्यता और संस्कृति का निर्देशन कराया । । यदि हम पंजाब और गुजरात के मध्यकालीन सत साहित्य का अनुशीलन करते है, तो हमें गुजरात में अखा, दादू, माणभट्ट, प्रीतम निरांत आदि की परंपरा दिखायी देती है वहीं पर पंजाब में ठीक उसी प्रकार के समानांतर सिक्ख गुरुओं की परंपरा बडी तेजी के साथ पंजाब के जनमानस पर आन्दोलित होती हुयी दिखायी देती है । जिस प्रकार गुजरात सत साहित्य के पीछे उस प्रदेश की राजनैतिक, भौगोलिक, और सामाजिक स्थिति उत्तरदायी हैं ठीक उसी प्रकार पंजाब के संत साहित्य के पीछे उस प्रदेश की परंपराओं का बल निहित होता है ।

हिन्दी जगत के सुदीर्घकाल में विक्रम की 17 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में उत्तर भारत में यहां गोस्वामी तुलसी दास जी ने राम चरित मानस की रचना की । वहीं पर पंजाब में आदि ग्रंथ की रचना की । जिसमें संत गुरुओं की वाणियाँ संग्रहित है आदि ग्रंथ से पूर्व गुरुओं की वाणी संचिकाओं के रूप में विद्यमान थी । गुरु अर्जुन देव स्वयं इन संचिकाओं को प्राप्त करनें के लिये गोविन्दबाल गये थे । जिस प्रकार नरसिंह मेहता, अखा दादू आदि ने सगुण और निर्गुण उपासना पद्धतियों पर प्रकाश डाला । ठीक उसी प्रकार से गुरु नानक देव जी से लेकर पंजाब के संत कवियों नें निर्गुण एव सगुण पद्धतियों का प्रचार किया । भगवान शंकराचार्य ने जिस निरुपाधि निर्गुण ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की उसकी अवहेलना में रामानुज से लेकर वल्लभाचार्य तक जितनें भक्त दार्शनिक हुये सबने शंकर के मायावाद और विकारवाद से पीछा छुडाना चाहा । विक्रम की पंद्रहवी और सोलहवीं शताब्दी में वैष्णव धर्म का आन्दोलन देश के एक कोने से दूसरे कोने तक हुआ । जिसके प्रधान प्रर्वतको में स्वामी वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ तथा चैतन्य थे । सगुण भक्ति के प्रचार में विट्ठलनाथजी नें गुजरात का छः बार भ्रमण कर अनेक वैष्णव मन्दिरों की प्रतिष्ठा की । द्वारका तथा डाकोर के विशाल मन्दिर वैष्णव धर्म के प्रमुख केंद्र बन गये । गुजरात का पूर्व जनमानस वैष्णव मत के प्रपत्तिवाद, नित्यलीला तथा माधुर्य भाव की ओर सहज ही आकर्षित हो गया । नरसिंह एवं मीरा की सगुण भक्ति में सम्पूर्ण गुजरात एक बार निमग्न हो गया । और ज्ञानाश्रयी . धारा की अविच्छिन्न कडी जो कबीर, पीपा, रैदास और नाथपंथी कापालिकों से जुड चुकी थी वह टूटती नज़र आने लगी। मांडिण और धनराज की कविता भी इस क्षेत्र में कोई विशिष्ट प्रभाव नहीं छोड़ पाती ।

गुजरात का समस्त मध्ययुगीन साहित्य, धर्मभावना से ओतप्रोत है । जैन, वैष्णव स्वामी नारायण संत मतावलंबी और सूफी कवियों की समस्त रचनायें धार्मिक भावना पर आधारित है । धर्म से अलग रहना दूर उसके बारे में ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता । इस धर्म प्रधान साहित्य में ज्ञान वैराग्य विषयक काव्यों की बहुलता और जीवन के उल्लास की न्यूनता है । गुजरात

की निर्गुण धारा के उद्भव एवं विकास में धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का योग राजनीतिक परिस्थितियों से कहीं अधिक है। जिस राजनीतिक उथल पुथल के अंर्तगत उत्तरी भारत की निर्गुण साधना के बीज अंकुरित हुये इस प्रकार की कोई विकट परिस्थिति गुजरात के इतिहास में प्रायः उपलब्ध नहीं होती । आर्थिक दृष्टि से गुजरात सम्पन्न एवं समृद्धि के शिखर पर था । इसलिये मुगलों में धर्म– कट्टरता अवश्य रही किन्तु गुजरात के प्रजा के प्रति उनकी हमदर्दी की भावना रही इसलिये मुगलकाल आते – आते संपूर्ण गुजरात में शांती एवं समृद्धि फैल चुकी थी । उत्तर भारत के समान गुजरात में मुस्लिम जाति उखड़ी नहीं । गुजरात के संतों में न तो सगुण निर्गुण के खंडन. मण्डन की प्रवृत्ति ही है और न हिन्दू – मुसलमान का झगड़ा ही बल्कि ज्ञान के प्रकाश में उस आत्मा को खोजने का प्रयास है जो सामाजिक रूढियों एवं धार्मिक बन्धनों के बीच भटक गयी थी । गुजरात का समस्त मध्यकालीन साहित्य वस्तुतः धार्मिक संस्कारों से आबद्ध था । परलोक एवं परमेश्वर की कामना करने वाले लोगों को इस युग के संतो ने ज्ञानगंगा के किनारे बैठ आत्मा के दर्पण पर छायी हुयी धूल को धोया और अनुभव की प्रयोगशाला में परमात्मा के साक्षात्कार करने का आदेश दिया । कबीर से दो सौ वर्ष बाद उनके जैसा ही प्रखर ब्यक्तित्व अखा के नाम से गुजरात में अवतरित हुआ । 17वीं शताब्दी का उत्तर भारत भक्ति को छोड़ रीति को अपना रहा था । गुजरात समृधि के बीच भटकी हुयी आत्मा को ढूढ़ने मे लगा था । ऐसे युग के संतों की वाणी ने तीर का काम किया । कठोर सामाजिक एवं धार्मिक बन्धनों को तोड़ मुक्त वातावरण में इन्होंने ज्ञान की स्वर्ण गंगा बहायी । इन संतों के काव्य से हमें सर्वत्र उस घुटी हुयी जर्जर सामाजिक एवं धार्मिक अवस्था के दर्शन होते है । जिसकी नींव में दीमक लग चुकी थी । समाज में प्रयुक्त इस प्रकार की सभी रुढ़िवादी मान्यतायों को उखाड फेकनें का महान कार्य इस युग के इन सजग पहरेदारों नें उठाया । और सत्य के आइने में इन्होंने धर्म की वास्तविकता दिखलाई ।

गुजरात के जैन मत का अत्यधिक प्रचार प्रसार हुआ इन कवियों की कविता में मस्ती , प्रेम , अनासक्ति , रुढियों , का त्याग , अर्न्तमुखी प्रवृत्त संयमशील और सदाचार का उपदेश है जो कि ज्ञानमार्गी निर्गुण संतों ने दिया है । इनमें जो दान ,तप , शील और सत्याचरण की जो भावना है वह जैन साधना की ही देन है । संतों के साधना पक्ष को जैन साहित्य नें अधिक प्रभावित किया । दसवीं सदी से लेकर पंद्रहवी सदी तक वैष्णव मत का प्रचार गुजरात में जोर शोर से हुआ । वैष्णव तीर्थों में द्वारिका और डाकोर गुजरात के साथ – साथ समस्त भारत भर के महान पुण्य स्थलों में गिने जाते हैं । गुजरात के संतों की ज्ञानमार्गी शाखा यद्यपि वैष्णव धर्म के अनाचारों के विरोध में खडी हुयी किन्तु इस विचारधारा का वह नितान्त परित्याग नही कर सके । शंकराचार्य का अद्वैतमत शुष्क था । इसलिए भक्ति धर्म को प्रधानता मिली । जिसका रामानुजाचार्य तथा निम्बार्क नें व्यस्थितस्वरुप निश्चित करने के लिए भागवत धर्म को प्रोत्साहन दिया । सत साहित्य को समझने के लिये एक नया परिप्रेक्षप्य प्रस्तुत किया है । इसमें इस बात की पुष्टि हुयी है कि सभी संत एक ही ज्ञान गुदड़ी के धागे है । जो नामदेव है वही कबीर हैं वही नानक और अखा भी है । मध्यकाल में सारे देश में ज्ञान की गुदड़ी बिछी हुयी थी । छोटे से छोटे गांव में भी ज्ञान – गुदड़ी का कोई न कोई रत्न अवश्य विद्यमान था कुरान में कहा गया है कि एक भी गाव ऐसा नही जहां ख़ुदा की तरफ से खबरदार करने वाला न भेजा गया हो – ।

व इम्मिन उम्मिन इल्ला खलाकिया नजीरून –

कुरान 35 , 3 , 27 , – खुदा की तरफ से खबरदार करनें के लिये भेजे गये समाज के इन सजग प्रहरियों के व्यतित्व भी विलक्षण थे । उनके जीवन संबंधी तथ्यों का अनुशीलन करनें पर विदित होगा कि इनमें कितनें ही संत साधारण से आघातसेघबराकर घर बार त्याग कर विरक्त हुये थे । संत त्रिविक्रमानन्द लग्न मंडप में पुरोहित के सावधान कहनें पर भाग खड़े हुये और विरक्त हो गये थे । संत मूलदास दावाग्नि नें चीटियों को जलता देखकर जीवन की नश्वरता से अभिभूत हो उठे । अखा , प्रीतम , धीरो आदि महात्मा अपनी भार्यायों के

कर्कश स्वभाव एवं सगे संबंधियों के दुर्व्यवहार से संतप्त होकर ईश्वरोन्मुख हुये । ये सभी महात्मा वितरागी परोपकारी थे । लोक सेवा ही जैसें इनका ब्रत था । कच्छ के संत मेंकण दादा रेगिस्तान के पथिकों को पानीं पिलाते थे । संत मोरार भूखों को भोजन देने के लिये कंधे पर कावड़ रखकर घूमते थे । संत देवानन्द जलाराम आदि नें इन गरीबों के लिये अन्नछेत्र खोल रहे थे । इनमें से कुछ महात्मा सिद्ध एवं चमत्कारी पुरुष भी थे , अपनें कमंडल में से सैकड़ों व्यक्तियों को भोजन करा देना । कुयें में हाथ डालकर कमंडल में पानी भर लेना । सरोवर में चादर बिछाकर सो जाना । खड़ाउ पहनकर तालाब की सतह से खटाखट उस पार उतर जाना, मृत प्राणी को जीवित कर देना ऐसे चमत्कार हैं जिसपर विज्ञान के युग में सहसा विश्वास नहीं होता किन्तु यह ऐतिहासिक सत्य है कि इनमें से कितनें ही संतों ने सामूहिक रूप से जीवित समाधियाँ लेकर देह की नश्वरता को और आत्मा की अमरता प्रमाणित की है । जीवन की तरह इन संतों का कृतित्व भी विलक्षण है ये महात्मा गगन दोहन करके दूध पिलानें वाले स्वानुभावी संत थे । दिल दरिया में डुबकी लगाकर,राम रतन, को ढूढनें वाले मरजीवा थे । मर्मस्थल पर ताककर तीर मारनें वाले सच्चे मर्मवेधी सूरमा थे । सभी निष्पक्ष निस्पृह एवं निर्भय महात्मा थे । फिर इनकी वाणी विलक्षण कैसे न होती ?

मध्यकाल में जब विपत्तियों का दावानल धधक रहा था तब देश के संतप्त हृदय पर संतवाणी की सुखद बौछार हुयी थी । अन्य प्रान्तों की भाँति यह घटा गुजरात में भी उमड़ी घुमड़ी और बरसी थी । इस क्षेत्र के दादुर, मयूरों नें भी मुखर होकर आत्मा का उल्लास व्यक्त किया । यह दृष्टव्य है कि यह आत्मोल्लास प्रायः संत टकसाल की सर्व सुलभ सधुक्कड़ी वाणी में ही प्रस्फूटित हुआ । भारत व्यापी गौरव जो आज हिन्दी को प्राप्य है उसका वास्तविक श्रेय संत टकसाल को जाता है । संत साहित्य आत्मा का अलौकिक संगीत है । इसका मूल्यांकन साहित्य एवं कला के सामान्य निष्कर्ष पर करना उसके साथ घोर अन्याय करना है । संत दादू दयाल नें ऐसे ही पारिखियों को लक्ष्य करके कहा था "– केते पारिख पचि मुये, कीमत कही न जाय " इन

अमूल्य रत्नों का मूल्यांकन कैसे किया जाय ? भाषा छंद , अलंकार आदि उपकरणों के माध्यम से आज संत वाणी को परखा जा रहा है । संतों नें उन्हें भी कुछ महत्व नहीं दिया। इसलिये गुजरात के संत अखा ने स्पष्ट कहा है " अरे मूर्खों भाषा से क्यों चिपटे हुये हो ? हथियार की तरह भाषा तो एक साधन मात्र है । रण में विजयी होने वाला शूरवीर कहलाता है वह किस हथियार से विजयी हुआ इसका कोई महत्व नहीं । यथा " भाषा नें शुं वलगे भूर जे रण मां जीते ते शूर "

तात्पर्य यह है कि मूल्यांकन करते समय संत वाणी के प्रतिपाद्य पर दृष्टि रखनीं होगी जैसे कबीर नें कहा है । " मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान । " अर्थ वैभव एवं गुणवत्ता की दृष्टि से देखनें पर अनगढ संत वाणी निश्चय ही ऊँचे घाट की सिद्ध होगी । बौद्ध धर्म में गुरू का महत्व नहीं था पर जैसै, जैसै बुद्ध का महत्व बढा जिसका सूत्र था । " बुद्धम् शरणम् गच्छामि ।" वैसे ही बुद्ध को गुरु स्वीकार किया गया तंत्रयान में गुरु अनिवार्य हो गया और बुद्धसे मिलकर गुरु का स्थान और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया इसके पीछे लोक मानस था । इसी परंपरा में गोरखनाथ भी "गुरु" हुये और संतों में गुरु– गोविन्द अभिन्न हो गये जिसके फलस्वरूप महत्व में गुरु गोविन्द से भी बढ़ गये ।

स्वामी रामानन्द नें प्राकृत लोक भाषा में धर्म का उपदेश देकर भक्ति के द्वारा स्त्री– पुरुष, ब्राह्मण – शूद्र सभी के लिये खोल दिये जिन्होंनें प्राचीन जर्जर परम्परा का प्रवाह दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित किया। चौदहवीं तथा पंद्रहवीं सदी का सम्पूर्ण गुजरात स्वामी रामनन्द की विचार धारा से प्रवाहित है । कबीर, पीपा, रैदास इन्हीं के प्रेरणा के बल थे ,जिन्होंनें गुजरात को विशिष्ट स्थान दिया । गुजरात की ज्ञानाश्रयी धारा के ज्योतिर्धर दादू मांडण एवं अखा उत्तर की इस परंपरा से पूर्णतः प्रभावित हुये । कबीर के पश्चात सम्पूर्ण संत साहित्य में यदि कोई अद्वितीय रत्न दीख पड़ता है तो वह अखा है । गुजरात में जिस साधना के बीज कबीर नें रोपे थे उसे पल्लवित पुष्पित अखा नें किया है । संत काव्य के प्रर्वतन में तत्कालीन राजनैतिक

सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के साथ संतों की निजी परिस्थितियों का भी संपूर्ण हाथ रहा है । कबीर, नानक और तुलसी, किसी ऐसी ही परिस्थिति के आघात से खिन्न होकर सांसारिकता से विरक्त हुये । नरसी मेहता भाभी के वाक्य बाणों से तंग आकर पत्नी को त्याग कर साधू संतों के बीच रहनें लगे । अखा अपनी धर्म बहन के अविश्वास से खिन्न होकर त्रिविक्मानन्द विवाहमंडप में सावधान की पुकार सुनकर सच्चे सद्गुरु की खोज में निकल पड़े । अनुभव की प्रयोगशाला में सर्वप्रथम इन्हीं ने स्वयं को कसा, इसके पश्चात ही दूसरों का पथ प्रशस्त किया ।

अखा का जीवनकाल निराशा , दुख परलोकाभिमुक्ता, राजनीतिक क्षुब्धता का काल था । शासकवर्ग के अन्याय , दुराचार एवं अविवेकी दमन और शोषण से उत्पन्न असुरता का युग कहा है । विभिन्न कालखण्डो में अवतरित होने पर भी कबीर ,अखा एवं नानक जी का संबंध मुसलमानों द्वारा शासित प्रदेशों से रहा । अतः राजा को निरंकुश सत्ता, सैनिक, शासन ,भ्रष्ट प्रशासन ,काजियों का पक्षपातपूर्ण न्याय , कठोर दंड व्यवस्था राजद्वार में प्रचलित खुशामद, अवसरवादिता , छल एवं प्रपंचपूर्ण आचरण की दृष्टि से इन संतों के कालखंडो में न्यूनाधिक समानता पाई गयी। इसलिए इन कवियों की रचनाओं में समान भाव भूमि की संभावना की जा सकती है । जीवन विषयक तथ्यों और घटनाओं से स्पष्ट है कि साप्रदायिक विद्वेष से प्रेरित अथवा अन्यायपूर्ण शासकीय व्यवहार का न्यूनाधिक अनुभव कबीर, अखा एवं नानक तथा तत्कालीन जन साधारण ने किया । चूँकि ये तीनों कवि जनसाधारण के बीच ही तो रहे अतः प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से दैनंदिन के ऐसे अनुभव उनकी काव्य चेतना को स्वभावतः प्रभावित कर सकते हैं ।

युद्ध व उपद्रवों से उत्पन्न अशान्ति की दृष्टि से देखे तो कबीर एवं नानक की अपेक्षा अखा के समय में कुछ शान्ति थी । शायद इसी लिये सेनाओं का एकत्रीकरण गढ़ों को तोड़नें और युद्धों के विनाशक परिणामों के सूचक जितने कबीर और नानक में मिलते हैं उतनें अखा की रचनओं में नही । कबीर एवं नानक के समय केन्द्रीय सत्ता निर्बल थी । यही कारण था कि कबीर नें

जिस निर्भयता से इस्लाम धर्मियों को फटकारा है अखा ऐसा नहीं कर पाये है यह उनकी प्रवृत्तियों का अन्तर होना भी स्वाभाविक है । तदुपरांत अनाधिकृत कर वसूल करके राज्यकर्मचारी यद्यपि तीनों ही के समय में प्रजा का शोषण करते रहते थे । कबीर व नानक के समय प्रजा की जो संघर्षशील मनः स्थिति थी ऐसी स्थिति अखा के समय में समाज की नहीं थी । इसी कारणवश कबीर व नानक की उक्तियों में जो तीखापन है वह अखा की उक्तियों में नहीं हैं। कबीर व नानक जी के समय की आर्थिक स्थिति बड़ी विकट थी । जबकि अखा के समय में आर्थिक स्थिति इन दोनों से कुछ अच्छी थी । तीनों कवियों के समय में समाज मुख्य रूप से हिन्दू और मुसलमान के दो वर्गों में विभक्त था । ये दोनों समाज यूँ तो कबीर व नानक के समय से ही एक दूसरे से प्रभावित होने लगे थे, किन्तु अकबर की सहिष्णु–नीति, अन्तरजातीय–विवाह ,राजनीतिक आवश्यकता सूफी एवं संतो के प्रयत्न एवं हिन्दू धर्म से परिवर्तित हुए मुसलमानों की बहुमति आदि कारणों से अखा के समय वे एक दूसरे के अपेक्षाकृत रुप से अधिक थे । हिन्दू समाज में प्रचलित जातिप्रथा, छुआ–छूत,ऊँच नीच का भेद भाव, बाल विवाह , लड़कियों की बाल हत्या एवं पर्दा आदि के उल्लेख तीनों की रचनाओं में पाये जाते हैं । मुसलमानों में सुन्नत, मांसाहार ,जीव हिंसा ,गुलाम प्रथा एवं बहु पत्नीत्व आदि के उल्लेख व आलोचना जितनी कबीर व नानक ने की है उतनी अखा ने नहीं की । इसका कारण कबीर के समय में अनुभव की गई मुसलमानों की धार्मिक विद्वेष की उग्र भावना का तीव्र प्रतिकार ही है । मुगल–कालीन विलासिता का तत्कालीन समाज एवं साहित्य पर व्यापक प्रभाव पडा । जिससे अखा की रचनाओं में जहाँ तहाँ नर–नारी के ही नहीं वरन् पशु– पक्षियों के मिथुन संबंधों का भी उल्लेख मिलता है । जबकि कबीर, नानक की रचनायें ऐसे उल्लेखों से प्रायः अछूती रही है । इनके समय में जनता एक तो अपनें अस्तित्व के लिये संघर्षशील रहती थी, दूसरी उस अनिश्चितता की स्थिति में जन जीवन की सारी शक्ति जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करनें में व्यय होती थी । अतः हास– विलास में व्यस्त रहना उस समय संभव नहीं था, जबकि अखा के समय में जन–जीवन की

निश्चितता कुछ अधिक रही जिसमें ऐसी स्थिति में विलास और मनोरंजन की ओर जनता का झुकाव रहा ।

उस समय की राजनीतिक स्थिति की भयंकरता समाजिक व्यवस्था की अस्तव्यस्तता एवं धार्मिक बाह्याडम्बरता तथा रुढ़िग्रस्तता के कारण देश विषमावस्था में था । देशमें दो वर्ग थे एक शासकों का और दूसरा शासितों का, इन दोनों की मानसिक अवस्थायें पृथक–पृथक थी । शासकों में अहं भाव की प्रधानता आ गयी थी उनकी अहंमन्यता भावना अपनी चरमं सीमा पर पहुँच चुकी थी । शताब्दियों से अत्याचार, अपमान और राजनितिक दासता के फलस्वरूप हिन्दू अपना शौर्य आत्मगौरव और आत्मविश्वास खो बैठे थे। धर्म का वास्तविक स्वरूप जैसे लुप्त सा हो गया था जिसे फिरसे एकबार कबीर व नानक जैसे संतों नें धर्म के उस वास्तविक स्वरूप को जनता जर्नादन के दिलों में उजागर किया । जबकि अखा के समय की धार्मिक स्थिति को इस दृष्टि से मिलता जुलता कहा जा सकता है । कारण कि एक तो अखा के समय तक निर्गुणी संतों के नाम पर भी पंथो का प्रचलन हो चुका था । जिसके परिणाम स्वरूप अब वे निर्द्वन्द और निर्भय व्यक्ति न रहकर गद्दीपति गृहस्थ होने लगे थे । दूसरे प्रत्यक्ष व अप्रत्क्ष रूप से गुजरात की समस्त धार्मिक चेतना के मूल स्रोत काशी, ब्रज एवं अयोध्या आदि क्षेत्र रहे है । अतः किसी भी धार्मिक आन्दोलन के स्वरूप में विकृति का आजाना स्वभाविक था । तीसरे गुजरात के एक स्वतंत्र राज्य बनने के समय से ही यहाँ हिन्दू व मुसलमान के मध्य एक दूसरे के निकट आने के वातावरण का सर्जन होने लगा था । एवं चैथी सूफियों की पीर तथा मज़ार पूजा का प्रचार भी बढ़ रहा था, जो कि संतों का गुरु व समाधि पूजा से बहुत साम्य रखती थी । अतः अखा के समय में गुजरात के धार्मिक क्षेत्र में कोई ऐसी क्रान्तिकारी भावना लक्षित नहीं होती , जो कि कबीर व नानक समय में रही । इसीलिये शास्त्रानुमोदन की चिन्ता से मुक्त कबीर व नानक की धार्मिक चेतना जन – साधरण को सीधे प्रभावित करनें वाली और व्यहारिकता की ओर झुकी हुयी है तो उधर अखा की धार्मिक चेतना अपेक्षाकृत रूप में शास्त्रानुमोदन की चिन्ता से युक्त व सैद्धान्तिक पक्ष या वैचारिकता की ओर अधिक झुकी हुयी है ।

दामपत्य – प्रेम व विरह कबीर व नानक की प्रेमाभक्ति में भी स्वीकृत है किन्तु वहां लौकिक प्रेम की गंध नहीं है । अखा में सगुण भक्ति श्रृंगार के रंग में रंगी जा चुकी थी ।

संतो की वृत्ति सारग्रही होंनें के कारण ही उन्हें जो बात यहाँ पर वज़नदार लगी उसे ग्रहण किया जो निस्सार लगी उसे त्याग दिया । उन दोनों के ग्रहण में से भी उन्होंने स्वयं के चिंतन,मनन ,अनुभव एवं व्यवहारिकता आदि साधनों से कूट– फटक कर उनके छिलकों को उड़ा दिया और शेष रहे कणों का संग्रह अपनी रचना में कर लिया । 1

जिसके कारण उनकी रचनाओं में स्वानभूत सत्य का भी उद्घाटन हुआ है । 2 षड्र्दर्शन का उल्लेख कबीर नानक अखा इन तीनों संतों नें किया । षड्र्दर्शनो में से कर्म मीमांसा या पूर्व मीमांसा का मार्ग ही पृथक था ज्ञान से मोक्ष प्रप्ति के समर्थक न्याय व वैशेषिक दर्शनों का भी परवर्तित विचार एवं साधना पर वैसा व्यापक प्रभाव नहीं पड़ा जैसा वेदांत ,सांख्य एवं योग का। कबीर, नानक एवं अखा पर इन तीनों वेदांत सांख्य एवं योग का प्रभाव विशेषतः लक्षित होता है । औपनिषदिक ज्ञान का ही नाम वेदांत था ।3। वेदों में भी विभिन्न मतों की प्रतिपादन किया गया है । जीवन का अन्तिम लक्ष्य याज्ञिक कर्मों से प्राप्त सुखद लोक या स्वर्ग की जगह एक मात्र ज्ञान से प्राप्त "मोक्ष " है । कर्मों के अर्न्तगत बाह्य कर्म के साथ साथ मानसिक कियाकलाप भी आते हैं। द्रव्य यज्ञों की अपेक्षा मानसिक यज्ञ श्रेष्ठ फलदायक होते है । अच्छे और बुरे कर्म सभी बन्धन या जन्म मरण के कारण होते है । किन्तु निष्काम कर्म अबंधक होते है । सच्चा सुख भोगो के भोगनें में नहीं बल्कि उनके त्याग में है । अतः व्यक्ति को इन्द्रियों का दास नहीं बल्कि स्वामी बनना चाहिये । यह नाम रुपात्मक सृष्टि

1–क.ग्र.पद 326 । छ.686 दे. सोरठा 86

2–डा. मदन गोपाल गुप्त " मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति,पृ. 191–92,

3– वेदान्त विज्ञान सुनिशचितार्थः(मु.3,2,5) वेदान्ते परमम् गुहम् (छवे 6,22)

अनित्य है इसमें सर्वत्र सत्य , नित्य ,पूर्णआनंदमय एक तात्विक सत्ता व्याप्त है जिसे व्यापक ब्रह्म कहते हैं । जो अगम अगोचर है । देव ,दानव , नर , गंधर्व ,किन्नर आदि सभी उसी के आधीन है । चन्द्र ,सूर्य , अग्नि , पवन , उसी से आज्ञा प्राप्त कर चलते है । उससे परे कुछ भी नहीं है । अज्ञान ही बन्धन का कारण है । आत्मज्ञान की प्रप्ति हो जानें के पर जीवात्मा बंधन से मुक्त होकर अपनें सत्य , नित्य , एवं आनंदमय स्वरूप को प्राप्त कर ब्रह्म ही हो जाता है । आत्मज्ञान की प्राप्ति में मुमुक्षु का अधिकारी होना अत्यंत आवश्यक है । मुमुक्षु में विवेक व वैराज्ञ के अलावा सत्य ,संयम , अहिंसा , तपस्या , ज्ञान, एवं माता पिता व गुरु की आज्ञा स्वीकार करना व अनके प्रति सेवा भावी होना आवश्यक है । ये सभी संत अद्वैतवादी– ज्ञानमार्गी थे । सर्वव्यापी ब्रह्म के स्वरूप –निरूपण सर्वात्म –भाव ,आत्मा व ब्रह्म के'(अद्वैत') मुक्त जीव का ब्रह्म ही हो जाना । सृष्टि की अनित्यता , जीव के अज्ञान , ज्ञान द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति , मोक्ष की साधना में बाह्य कर्मो की अनुपयोगिता, बहुत अध्ययन विरोध , मानसिक अर्चन–पूजन की श्रेष्ठता ,साधना क्षेत्र में उच्च जाति या वर्ण की आवश्यकता की अस्वीकृति , साधक के अधिकारी होनें की आवश्यकता , गुरू की देवी जैसी भक्ति , साधक द्वारा सत्य, अहिंसा ,संयम ,विवेक एवं वैराग्य का पालन करना आदि विषयों पर उपनिषदों व कबीर एवं अखा की रचना , नानक की रचनाओं में पर्याप्त विचार साम्य पाया जाता है । मन पर विजय प्राप्त करनें के लिये उपनिषदों नें जिस आध्यात्म योग या ," स्थिर इंद्रिय धारणा" को स्वीकार किया है जबकि संतो नें हठयोग का सहारा लिया ,यद्यपि दोनों का लक्ष्य एक ही है उपनिषदों की प्राणोंपासना का स्थान संतों की निर्गुण भक्ति नें ग्रहण कर लिया है । कबीर व नानक पर उपनिषदों का प्रभाव गुरूउपदेश अथवा सत्संग चर्चा आदि के किसी अप्रत्यक्ष माध्यम से हुआ । जबकि अखा पर गुरू ब्रह्मानन्द की वाणी द्वारा इसका प्रभाव पड़ा । गीता भारतीय चिंतन का सर्वोच्च शिखर है । चिंतन के क्षेत्र में ज्ञानियों व योगियो के ब्रह्मवाद सांख्य के प्रवृत्त का पुरुषवाद और भागवतों के ईश्वर वाद तथा साधना के क्षेत्र ज्ञान , योग ,कर्म एवं भक्ति का

उसमें सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है । जो ब्रह्म निर्गुण निराकार है वही सगुण साकार भी है । जो अजन्मा है वही धर्म की स्थापना के लिये युग-युग में जन्म लेता है । जो अकर्ता, द्रष्टा एवं साक्षी है । जीव ईश्वर का अंश है ।कर्म जड है, जो न किसी को बाँधते है और न छोड़ते है बंधन का कारण कर्म में फलासक्ति का होना है । निर्गुण की उपासना श्रेष्ठ है किन्तु कष्टसाध्य है,जबकि सगुण की उपासना सुलभ व श्रेष्ठ है।सभी साधनाओं का अन्तिम लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति हैं। कबीर ,नानक ,की रचनाओं में गीता का उल्लेख नहीं मिलता, जबकि अखा में गीता का साक्ष्य भी किया है।उल्लेखनीय यह है कि गीतोक्त निर्गुण ब्रह्म, ब्रह्म का विराट – स्वरूप , आत्मा की सर्वव्यापकता समत्वबुद्धि ,प्रभू की भक्तवत्सलता ,प्रपत्ति, काया दमन का विरोध उपासना में वर्ण व लिंग भेद की अमान्यता एवं निष्काम कर्म आदि में इन तीनों कवियों की आस्था है अर्थात इन कवियों पर भी गीता में उल्लेखित परंपरागत विचारधारा का प्रभाव एक सीमा तक अवश्य परिलक्षित होता है।

सृष्टि का मूलकारण प्रवृत्ति है जो चेतन पुरुष के संपर्क से चेतन्वत होकर कार्यरत होती है प्रकृति के संपर्क में आनें पर पुरुष स्वरूप विस्मृत को प्राप्त होता है और जीव रूप में स्वयं को कर्ता व भोक्ता मानकर सुख दुख का अनुभव करता है । त्रिविध तापों से आत्यांतिक निवृत्ति ही मोक्ष है 1 जिसे ज्ञान के द्वारा जीवित अवस्था में भी पाया जा सकता है ।2 सृष्टि रचना मे साख्य स्वीकृत 24 तत्वों को उनकी संख्या में न्यूनाधिक परिर्वतन करके प्रायः सभी मतो नें स्वीकार किया है । सृष्टि रचना विषयक विचारों में कबीर ,नानक एवं अखा तीनों ही सांख्य के ऋणी रहें है । कबीर व नानक ने अव्यक्त से उत्पन्न तीन गुण तथा पाँच तत्वों का उल्लेख किया है । 3

1—सां.सु.1—1

2—सा.का.3—23, 3—24, 3—78

3—दे.,क.ग्रं. पद 44, पृ. 80 एवं पद 194,पृ. 115

अखाकृत , "पंचीकरण " का मूल आधार ही सांख्य व उपनिषदों की पंचकोष विषयक मान्यता है ।। नानक ,कबीर के ही समान उन्होंनें भी सृष्टि की रचना अव्यक्त से ही हुयी मानी है । 1– कबीर ,नानक एवं अखा तीनों ने संसार को स्वप्नवत असत् माना है । जीव की तुलना "बंध्यासुत" से की है जिसकी उत्पत्ति स्थित एवं लय सभी मिथ्या है । द्वैत का कारण मन उन्होनें माना है । अमनी भाव पर मन का ब्रह्म हो जाना या जीव का ब्रह्म ही हो जाना भी उन्हें स्वीकृत है ।अतः इन संतों पर आजातवाद का न्यूनाधिक प्रभाव अवश्य है ।

प्रस्तुत शोधप्रबंध "पंजाब और गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी संत काव्य में 'गुरू' तत्व की अवधारणा एक अनुशीलन " के विषय में विद्यार्थी जीवन से मुझे लगाव रहा है । मेरी जन्म भूमि तो गुजरात रही मगर मेरा बचपन पंजाब में ही बीता ,पुनः मेरा कार्य क्षेत्र गुजरात रहा । परंतु जितना लगाव मुझे अपनी जन्मभूमि से था उतना ही लगाव मुझे अपनी मातृभूमि से भी था । बचपन की वो पंजाब की धरती की सौंधी – सौंधी सुगंध और संतों के साथ हुये समागम और सत्संगों को मै भुला न पायी थी । गुजरात में आते ही कुछ वर्षों पश्चात मुझे सत्संगों का अवसर पुनः मिला जिससे मेरी यह जिज्ञासा पंजाब के गुरुओं और संतो के साहित्य और दर्शनों को प्रकाशित करनें के लिये मुझे बार – बार आन्दोलित करनें लगी । बी. ए. कक्षा तक मैं अर्थशास्त्र की छात्रा रही परंतु संत साहित्य और हिन्दी जगत का प्रकाश जबतक मेरे जीवन पर न पड़ता तब तक मैं अपनें आप को अधूरी महसूस कर रही थी । हिन्दी विषय से एम. ए. उत्तीर्ण करनें के पश्चात् मैंने साहित्य पर शोध कार्य करनें का विचार किया ।

जिसके लिये मैंने तत्कालीन हिन्दी विभाग के विभगाध्यक्ष डॉ. रमण-लाल पाठक जी का संपर्क किया । डॉ. पाठक जी नें मुझे "पंजाब और गुजरात " के मध्यकालीन हिन्दी संत काव्य में गुरु तत्व की अवधारणा एक अनुशीलन" विषय पर शोध प्रबंध प्रस्तुत करनें की स्वीकृत दी तो मैं फूली न समायी । मुझे बड़ी प्रसन्नता हुयी क्यों कि गुजरात के संत कवियों

1:–दे. ,पंचीकरणः चौपाई 2 एवं आगे ।

पर भी अध्ययन करने की मेरी उत्कट इच्छा थी । डॉ. रमणलाल पाठक जी के निवृत्त हो जाने पर मैं यह शोधकार्य कलासंकाय संस्कृत महाविद्यालय के साहित्य शास्त्र के प्राध्यापक डा. हरिप्रसाद पाण्डेय जी के निर्देशन में मैंने यह कार्य पूर्ण किया ।

प्रस्तुत शोधप्रबंध न केवल हिन्दी साहित्य के जिज्ञासुओं के लिए ही उपयोगी है अपितु दर्शनशास्त्र के जिज्ञासुओं के लिये भी उतना ही उपयोगी है। इस शोधप्रबंध में मध्यकालीन संत युग की मानव चेतना , गुरु–शिष्यों के संबंध आचार–विचार संतों के उपदेश मूलक वाक्यों और आदर्शों पर गहराई पूर्वक विचार किया गया है । संतों की रहस्यवादिता उनके गूढ़ वचनों को खोलकर रखना , उलझी हुयी विचार धाराओं को जनता के सम्मुख रखना इस शोध प्रबंध का यह भी एक महत्वपूर्ण उपदेश रहा है । संत साधना में प्रचलित विभन्न मत , मतांतरों और उनके विचारों को स्पष्ट करनें का भी प्रयास इस शोधप्रबंध में किया गया है । यह शोधप्रबंध एक सहृदय अध्येता के लिये कितना महत्वपूर्ण हो सकता है यह तो कोई गहन चिन्तन करनें वाला सहृदय विचारक ही समझ सकता है । अपनें कार्य की प्रशंसा करना एक सच्चे मनिषि साधक के लिये अविवेक ही सिद्ध होगा । इसलिये यह शोधप्रबंध स्वयं अपने गुणानुवाद आपके समक्ष प्रस्तुत करनें में सक्षम हो सकेगा , यह मुझे पूर्ण विश्वास है ।

प्रस्तुत शोधप्रबंध कुल सात अध्यायों में विभाजित है । अन्त में परिशिष्ट की भी योजना दी हुयी है ।

प्रथम अध्याय के अर्न्तगत सर्वप्रथम पृष्टभूमि को निर्दिष्ट किया गया है। पृष्ट्भूमि के मध्यकाल में पहले संतों द्वारा प्रतिपादित गुरुत्व की अवधारणा पर गहराई के साथ विचार किया गया है । इसके बाद वेदों पुराणों एवं उपनिषदों में निरुपित गुरुत्व की अवधारणाओं पर विस्तार के साथ चर्चा की गयी है। बीच बीच में शोध तथ्यों को यथासंभव स्पष्ट करनें का भी प्रयास किया गया है । नाथों सिद्धों की वाणियों में गुरुतत्व विषयक अवधारणा पर इसी अध्याय में प्रसगानुसार प्रकाश डाला गया है इसी अध्याय में ही सत काव्यों में गुरुतत्व विषयक अवधारणा पर भी प्रकाश डाला गया है ।

द्वितीय अध्याय के अंर्तगत दर्शन शास्त्र के परिप्रेक्ष्य में नाथें सिद्धो और संतो की वाणियों का दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है इसके उपरांत नाथों सिद्धों और संतों की वाणियों का गुजरात के संत कवियों पर पडे हुये प्रभावों को स्पस्ट किया गया है ।

तृतीय अध्याय के अंर्तगत गुजरात के मध्यकालीन संत काव्यों में गुरुतत्व की अवधारणा के साथ–साथ गुरु , शिष्य परंपरा को भी प्रकाशित किया गया है । इसके बाद गुजरात के मध्यकालीन संत कवियों के दार्शनिक विवेचन को प्रस्तुत क़िया गया है ।

चतुर्थ अध्याय के अर्न्तगत पंजाब के मध्यकालीन संत काव्यों में गुरुतत्व विषयक अवधारणा पर प्रकाश डाला गया है साथ ही साथ गुरु , शिष्य परंपरा को भी स्पस्ट किया गया है । इसके बाद पंजाब के मध्यकालीन सत कवियों का दार्शनिक एवं विवेचनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय के अंर्तगत गुजरात और पजाब के संत कवियो का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हुये गुरुतत्व विषयक अवधारणाको भी तुलनात्मक स्वरुप में स्पस्ट करनें का प्रयास किया गया है । गुजरात और पंजाब के संत कवियो में कौन–कौन सी समानतायें और असमानताये हैं ? उसपर विचार किया गया है । इसके साथ – साथ गुजरात और पंजाब के संत कवि किस विचार धारा से प्रभावित हैं । इस विषय को पूर्णतयः प्रकाशित करनें का प्रयास किया गया है । षस्ठम् अध्याय के अंर्तगत गुजरात अेर पंजाब के विभिन्न संत कवियों के जीवन परिचय को प्रस्तुत करते हुये उनके विभिन्न संप्रदायों और गुरु परंपराओं पर भी प्रकाश डाला गया है ।

सप्तम अध्याय के अर्न्तगत प्रस्तुत शोध प्रबंध के उपसंहार को प्रस्तुत किया गया है ।

अन्त में परिशिष्ट के अंर्तगत सहायक ग्रन्थें व पत्र पत्रिकाओं की सूची दी गयी है । शोधका यह विषय कितना नवीन , स्पष्ट और मौलिक है इसकी परख एक सहृदय अध्येयता ही कर सकता है । जैसे एक महल बनवानें का कार्य प्ररम्भ में अजीब अटपटा और शून्य में लटका हुआ होता है पर महल

बन जानें पर जो आनन्द प्राप्त होता है । वैसे ही इस नये शोध की प्रक्रिया प्रारम्भ में भले ही अटपटी हो परंतु अंत में श्रृंखला बद्ध सप्रयोजन जुडी हुयी प्रतीत होती है ।

अन्त में मै पूज्य गुरुवर डॉ, रमण लाल पाठक जी को अपनें श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूँ । जिन्होंनें इस विषय के चुनाव में अपनीं सहमति प्रस्तुत की । हिन्दी विभाग के अध्यक्ष एवं पूज्य गुरुवर डॉ, प्रताप नारायण झां जी को वंदन करते हुये मैं अत्यंत गर्व एवं प्रसन्नता से फूल उठती हूँ । जिन्होंनें समय समय पर मुझे प्रोत्साहित किया । हिन्दी विभाग के वरिष्ठ प्रध्यापको में डॅा, प्रेम –लता बाफना, डॅा. पारुकान्त देसाई एवं डॉ. विराट विष्णु जी की भी मैं आभारी हूँ जो मेरे तमसावृत्त मार्ग को दीपावलोकित करते रहे। कला संकाय संस्कृत महाविद्यलय के वरिष्ठ प्रध्यापक डॉ, हरि प्रसाद पाण्डेय जी की भी मैं आभारी हूँ । जिनके कुशल निर्देशन से यह कार्य पूर्ण करनें में मै सक्षम हुई हूँ ।

उन पुस्तकालयों और शिक्षा संसथानों की भी मैं आभारी हूँ । जिनसे मुझे आवश्यक सामग्री के संचयन में सहायता मिली है । अन्त में मैं डॅा,अंबाशंकर नागर ,डॅा.अक्षय कुमार गोस्वामी , डॅा. मनमोहन सहगल , डॉ,भगवान शंकरानन्द , डॅा, रामकुमार गुप्त ,डॉ. भगवानदास कहार जी की मैं पूर्ण रूप से आभारी हूँ जिन्होंनें मुझे संत साहित्य के संदर्भ में यथा समय मेरी जिज्ञासाओं का समाधान किया और शोध के महत्वपूर्ण तथ्यो से अवगत कराया । – :–

——— ::::::::: ———

रजनी शर्मा